श्योराज सिंह अहलावत और अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 1803 2012)

9 नवंबर 2012

(टी.एस. ठाकुर और फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला, जे.जे)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 239- का दायरा-सी धारा 239 सीआईपीसी के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय द्वारा अपनाया जाने वाला दृष्टिकोण-चर्चा-वैवाहिक मामला-दहेज के लिए उत्पीड़न और मानसिक और शारीरिक यातना के आरोप पत्नी द्वारा पति (अपीलकर्ता संख्या 3) और सास-ससुर (अपीलकर्ता संख्या 1 और 2) के खिलाफ - न्यायालय द्वारा संज्ञान, धारा 498ए - सीआरपीसी की धारा 239 के तहत आरोपमुक्त करने के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा आवेदन - ट्रायल कोर्ट द्वारा खारिज कर दिया गया। - उचित ठहराया गया - आरोप सही थे या नहीं यह एक ऐसा मामला है जिसे आरोप तय करने के चरण में निर्धारित नहीं किया जा सकता है, ऐसा कोई भी निर्धारण केवल मुकदमे के निष्कर्ष पर ही हो सकता है -

अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोपों की प्रकृति इतनी विशिष्ट है कि कम से कम आरोप तय करने के चरण में इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, इसलिए नीचे की अदालतों द्वारा अपीलकर्ताओं को आरोप मुक्त करने से इनकार करना उचित है।

अपीलकर्ता संख्या 3 पति है और अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 प्रतिवादी संख्या 2 के सास-ससुर हैं। प्रतिवादी नंबर 2 ने आरोप लगाया कि अपीलकर्ता उसे दहेज के लिए परेशान कर रहे थे और उसे शारीरिक और मानसिक यातना दे रहे थे। प्रतिवादी नंबर 2 का आगे का मामला यह है कि 10 दिसंबर, 2006 को उसे अपीलकर्ताओं द्वारा एक कार में जबरदस्ती ले जाया गया, जिसने उसे रात में एक सुनसान सड़क पर एक सुनसान जगह पर छोड़ दिया और उसे अपने वैवाहिक घर लौटने पर जान से मारने की धमकी दी। न्यायक्षेत्र पुलिस ने क्लोजर रिपोर्ट दायर की, जिस पर प्रतिवादी नंबर 2 ने विरोध याचिका दायर की। विरोध याचिका के आधार पर,

न्यायिक मजिस्ट्रेट ने आईपीसी की धारा 498ए के तहत अपीलकर्ताओं के खिलाफ संज्ञान लिया।

इसके बाद अपीलकर्ताओं ने सीआरपीसी की धारा 239 के तहत आरोपमुक्त करने के लिए आवेदन दायर किया और तर्क दिया कि दहेज उत्पीड़न के आरोप और 10 दिसंबर, 2006 की कथित घटना भी झूठी थी।

ट्रायल कोर्ट ने आरोपमुक्त करने के आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया था कि मामले में सबूत पेश किए जाने के बाद ही आरोपमुक्त करने के लिए जिन आधारों पर आग्रह किया गया था, उन पर विचार किया जा सकता है। व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने आपराधिक पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी जिसे उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया और इसलिए तत्काल अपील की गई।

कोर्ट ने अपील खारिज करते हुए अभिधारित किया-

1.1. वर्तमान मामला वारंट केस होने के कारण धारा 239 सीआरपीसी द्वारा शासित है। यह निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए कि क्या अभियुक्त या उनमें से कोई बरी किए जाने के योग्य है। सीआरपीसी की धारा 239 को पढ़ने से पता चलता है कि मामले की सुनवाई कर रही अदालत केवल अपने द्वारा दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए आरोपमुक्त करने का निर्देश दे सकती है और केवल तभी जब वह आरोपी के खिलाफ आरोप को निराधार मानती है। सीआरपीसी की धारा 240 में आरोप तय करने का प्रावधान है, यदि पुलिस रिपोर्ट और उसके साथ भेजे गए दस्तावेजों पर विचार करने और आरोपी की ऐसी जांच करने पर, यदि कोई हो, जैसा कि मजिस्ट्रेट आवश्यक समझता है, मजिस्ट्रेट की राय है कि इसके लिए आधार है यह मानते हुए कि अभियुक्त ने अपराध किया है। अध्याय XIX के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है, जिसका मुकदमा

चलाने के लिए ऐसा मजिस्ट्रेट सक्षम है और जिसे उसके द्वारा पर्याप्त रूप से दंडित किया जा सकता है। (पैरा 10,11) (1043-बी-ई-जी)

1.2. यह सामान्य बात है कि आरोप तय करने के चरण में अदालत को रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि कथित अपराध से उभरने वाले तथ्य, उनके अंकित मूल्य पर लेने पर, सभी सामग्रियों के अस्तित्व का खुलासा करते हैं। उस स्तर पर, अदालत से रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के संभावित मूल्य की गहराई में जाने की उम्मीद नहीं की जाती है। इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अपराध किया गया है और आरोपी को दोषी ठहराने का कोई आधार नहीं बनाया गया है। उस स्तर पर, सामग्री पर स्थापित मजबूत संदेह भी, जो अदालत को कथित अपराध का गठन करने वाले तथ्यात्मक अवयवों के अस्तित्व के बारे में अनुमानित राय बनाने के लिए प्रेरित करता है, उस अपराध के संबंध में आरोपी के खिलाफ आरोप तय करने को उचित ठहराएगा। (पैरा 11) (1044-सी-एफ) सी

1.3. यह सर्वविदित है कि आरोप तय करने के चरण में आरोपी का बचाव नहीं किया जा सकता। अभियुक्त की दलीलें पुलिस द्वारा उत्पादित सामग्री तक ही सीमित होनी चाहिए। स्पष्ट रूप से कानून यह है कि

आरोप तय करने या संज्ञान लेने के समय आरोपी को कोई भी सामग्री पेश करने का अधिकार नहीं है। (पैरा 14) (1046-बी-जी-एच; 1047-ए)

ओंकार नाथ मिश्रा और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य।

(2008) 2 एससीसी 561; 2007 (13) एससीआर 716; कर्नाटक राज्य बनाम एल मुनिस्वामी **1977 क्रि.एलजे 1125;** महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य बनाम सोम नाथ थापा एवं अन्य **1996 क्रि.एलजे 2448;** मध्य प्रदेश राज्य बनाम मोहनलाल सोनी **2000 क्रि.एलजे 3504;** उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पांधी **(2005) 1 एससीसी 568; 2004 (6) पूरक एससीआर 460;** श्रीमती रूमी धर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और **अन्य (2009) 6 एससीसी 364; 2009 (5) एससीआर 553** और भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल और अन्य वी. **(1979) 3 एससीसी 4; 1979 (2) एससीआर 229** -पर निर्भर किया गया।

प्रीति गुप्ता और एरिर बनाम झारखंड राज्य और अन्य **(2010) जी 7 एससीसी 667; 2010 (9) एससीआर 1168;** सज्जन कुमार बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो **(2010) 9 एससीसी 368; 2010 (11) एससीआर 669;** शक्सन बेल्थिसर बनाम केरल राज्य और अन्य। **(2009) 14 एससीसी 466-उद्धृत।**

2.मौजूदा मामले में जो आरोप लगाए गए हैं

न केवल पति-अपीलकर्ता संख्या 3 के खिलाफ बल्कि ए शिकायतकर्ता-पत्नी के सास-ससुर (अपीलकर्ता संख्या 1 और 2) के खिलाफ भी विशिष्ट है। वे आरोप सही हैं या नहीं, यह एक ऐसा मामला है जिसे आरोप तय करने के चरण में निर्धारित नहीं किया जा सकता है। ऐसा कोई भी निर्धारण केवल मुकदमे के समापन पर ही हो सकता है। इससे कभी-कभी किसी निर्दोष पक्ष पर अपराध करने का झूठा आरोप लगाकर उसे टालने योग्य उत्पीड़न का सामना करना पड़ सकता है, लेकिन जब तक कानूनी आवश्यकता और निर्धारित सिद्धांत दोषमुक्ति की अनुमति नहीं देते, तब तक न्यायालय को उस कानूनी प्रक्रिया को स्वीकार करते हुए बहुत कुछ करना मुश्किल होगा। ऐसे समय में बेईमान वादियों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जाता है, विशेषकर वैवाहिक मामलों में जहां प्रवृत्ति विपरीत पक्ष के परिवार के अधिक से अधिक सदस्यों को शामिल करने की होती है। हालांकि इस तरह की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने की जरूरत है, लेकिन अदालत आरोपमुक्त करने का निर्देश देने के लिए प्रारंभिक चरण में यह अनुमान नहीं लगा पाएगी कि आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोप सही हैं या गलत। इस मामले में अपीलकर्ताओं में से दो शिकायतकर्ता के सास-ससुर हैं जो वरिष्ठ नागरिक हैं। अपीलकर्ता नंबर 1, जो शिकायतकर्ता-पत्नी का ससुर है, सेना में एक मेजर जनरल रहा है, जो हर तरह से एक सम्मानजनक पद है। लेकिन दंपत्ति और पति के खिलाफ लगाए गए आरोपों की प्रकृति इतनी विशिष्ट प्रतीत होती हैं कि कम से कम आरोप

तय करने के चरण में इन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसलिए, निचली अदालतों ने आरोपमुक्त करने से इनकार करके कोई गलती नहीं की। (पैरा 17) (1048-एफ-एच; 1049-ए-सी)

3.हालांकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह निर्देशित किया जाता है कि अपीलकर्ता नंबर 1 और 2 को ट्रायल कोर्ट के समक्ष व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट दी जाएगी, सिवाय इसके कि जब ट्रायल कोर्ट उनकी उपस्थिति का निर्देश देना आवश्यक समझे। हालाँकि, उक्त अपीलकर्ताओं को यह सुनिश्चित करना होगा कि सुनवाई की सभी तारीखों पर एक वकील द्वारा उनका विधिवत प्रतिनिधित्व किया जाए और ऐसा न होने पर वे मामले की प्रगति में सहयोग करें।

जिसके तहत ट्रायल कोर्ट उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति का निर्देश देने के लिए स्वतंत्र होगा। (पैरा 18) (1049-डी-ई)

केस कानून संदर्भः

2010 (9) एससीआर 1168	उद्धृत	पैरा 8
2010 (11) एससीआर 669	उद्धृत	पैरा 8
2004 (6) सप्ल. एससीआर 460	पर आधारित	पैरा 8, 14
2007 (13) एससीआर 716	पर आधारित	पैरा 8, 11
(2009) 14 एससीसी 466	उद्धृत	पैरा 8

2009 (5) एससीआर 553	**पर आधारित**	**पैरा 8, 15**
1979 (2) एससीआर 229	**पर आधारित**	**पैरा 9, 16**
1977 क्रि.एलजे 1125	**पर आधारित**	**पैरा 12**
1996 सीआरआई.एलजे 2448	**पर आधारित**	**पैरा 12**
2000 क्रि.एलजे 3504	**पर आधारित**	**पैरा 12,13**

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारः आपराधिक अपीलीय संख्या 1803/2012

आपराधिक अपील 2010 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1241 में उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के निर्णय और आदेश दिनांक 06.05.2010 से।

गीता लूथरा, श्रीधर पोतराजू, सुधांशु पांडे, गैचांगपौ गंगमेई, अभिषेक आर शुकिया अपीलकर्ता की ओर से।

प्रमोद स्वरूप, आलोक शुक्ला, स्वेता रानी, आदर्श उपाध्याय, अबिष्ट कुमार प्रतिवादी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

जस्टिस टी.एस. ठाकुर, द्वारा 1. छुट्टी स्वीकृत।

2. यह अपील एक निर्णय और आदेश के विरुद्ध निर्देशित है दिनांक 6 मई, 2010 को उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारित किया गया, जिसके तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दायर 2010 की आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1241 को खारिज कर दिया गया है और अतिरिक्त

न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर द्वारा 9 मार्च, 2010 को पारित आदेश ने मुक्ति के लिए एक आवेदन को खारिज कर दिया है। पुष्टि की गई जिस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में यह मामला उठा है उसे संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता हैः

3. अपीलकर्ता क्रमांक 3-नवीन अहलावत और प्रतिवादी क्रमांक 2-श्रीमती रेनू अहलावत 28 सितंबर, 1998 को वैवाहिक बंधन में बंध गए। अपीलकर्ता नंबर 3, उस समय भारतीय सेना में कैप्टन के रूप में कार्यरत थे। शादी के तीन साल बाद इस जोड़े को एक बेटी का आशीर्वाद मिला। पत्नी-श्रीमती रेनू अहलावत के अनुसार परिवार में वृद्धि होने से उनके पति कैप्टन नवीन अहलावत और अपीलकर्ता नंबर 1 और 2, जो उनके सास-ससुर भी हैं, के साथ उनके संबंधों की मधुरता के मामले में कोई खास फर्क नहीं पड़ा क्योंकि वे उन्हें विवाह के बाद से ही दहेज के लिए लगातार परेशान करते रहे। उनके अनुसार, ये मांगें उनके पिता द्वारा अपीलकर्ताओं को चार लाख रुपये की राशि का भुगतान करने के बाद भी जारी रहीं। यह आरोप लगाया गया है कि प्रतिवादी नंबर 2-रेणु अहलावत की शारीरिक और मानसिक यातना, दहेज के अतिरिक्त वस्तु के रूप में एक लक्जरी कार की खातिर, उक्त भुगतान के बाद भी बंद नहीं हुई। प्रतिवादी संख्या 2-श्रीमती रेनू अहलावत का अगला मामला यह है कि 10 दिसंबर, 2006 को अपीलकर्ताओं ने उसे एक कार में जबरदस्ती बैठाया और रात करीब 8 बजे सिही गांव के पास एक सुनसान सड़क पर उसे छोड़ दिया और धमकी दी

कि अगर वह अपने ससुराल वापस लौटी तो उसे जान से मार दिया जायेगा। जब जितेंद्र सिंह और बृजवीर सिंह दो ग्रामीणों ने प्रतिवादी नंबर 2-रेनू अहलावत को कार के पास सड़क के किनारे रोते हुए देखा, तो उन्होंने अपीलकर्ताओं का सामना करने की कोशिश की, जिस पर अपीलकर्ता नंबर 3-नवीन पर उन्हें गोली मारने के लिए रिवॉल्वर निकालने और धमकी देने का आरोप है।

4. घटना की शिकायत 13 दिसंबर, 2006 को प्रतिवादी नंबर 2-रेनू अहलावत ने एसएसपी के पास दर्ज कराई थी। बुलन्दशहर जिसमें उसने अपीलकर्ता संख्या 3-नवीन अहलावत के साथ अपनी शादी और मानसिक एवं मानसिक स्थिति के बारे में विवरण दिया।

उनके हाथों उसे शारीरिक उत्पीड़न और बार-बार दहेज की मांग का भी सामना करना पड़ा। उसने अपीलकर्ताओं के साथ अपनी नन्दों नीना और मेघना पर भी इस तरह के उत्पीड़न में शामिल होने का आरोप लगाया।

5.क्षेत्राधिकार पुलिस ने घटना की जांच शुरू की, जिसके दौरान शिकायतकर्ता-श्रीमती रेनू अहलावत को पता चला कि उसके पति नवीन अहलावत ने उसके खिलाफ तलाक की एकतरफा डिक्री प्राप्त कर ली है। उक्त निर्णय और डिक्री की एक प्रति श्रीमती द्वारा एकत्र की गई थी। रेनू अहलावत ने 28 नवंबर, 2006 को इसे रद्द करने के लिए कदम उठाए। डिक्री को अंततः संबंधित न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया।

6.इस बीच, पुलिस ने एक क्लोजर रिपोर्ट दायर की, जिस पर रेनू अहलावत ने विरोध याचिका दायर की। विरोध याचिका के आधार पर न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ और शिकायतकर्ता की नन्दों नीना और मेघना के खिलाफ भी आईपीसी की धारा 498-ए के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान लिया। 13 फरवरी, 2009 के एक आदेश द्वारा नीना और मेघना को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इस आधार पर आरोपमुक्त कर दिया कि उनके खिलाफ कोई विशेष आरोप नहीं लगाए गए थे। इसके बाद अपीलकर्ताओं ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 239 के तहत दोषमुक्ति के लिए अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसमें उन्होंने आरोप लगाया कि उनके खिलाफ लगाए गए दहेज उत्पीड़न के आरोप झूठे थे और 10 दिसंबर, 2006 की घटना भी झूठी थी। जिस तारीख को अपीलकर्ता नंबर 1 और उनके बेटे अपीलकर्ता नंबर 3 दोनों ने अन्यथा सगाई करने का दावा किया था, जो उनके अनुसार रेनू अहलावत की कहानी को झुठलाता है कि उन्होंने उसे एक सुनसान सड़क पर छोड़ दिया था जैसा कि उसने आरोप लगाया था। हालाँकि, 9 मार्च, 2010 के आदेश द्वारा न्यायालय द्वारा आरोपमुक्त करने के आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया था कि मामले में सबूत पेश किए जाने के बाद ही आरोपमुक्त करने के लिए आग्रह किए गए आधारों पर विचार किया जा सकता है और

अपीलकर्ता संख्या 2 को जांच के दौरान दर्ज किए गए बयानों में मामूली विरोधाभास के आधार पर आरोपमुक्त नहीं किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश और अन्य राज्य। (टीएस.ठाकुर, जे.)

7. ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ताओं ने 2010 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1241 को प्राथमिकता दी, जिसे उच्च न्यायालय ने इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह अपीलकर्ताओं के खिलाफ कार्यवाही को रद्द करने का मामला नहीं बनता है। वर्तमान अपील बर्खास्तगी के उक्त आदेश की सत्यता पर सवाल उठाती है।

8.अपीलकर्ता की ओर से प्रीति गुप्ता और अन्य मामले में इस न्यायालय के निर्णयों के अधिकार पर तर्क दिया गया था। बनाम झारखंड राज्य और अन्य। (2010) 7 एससीसी 667, भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल और अन्य। (1979) 3 एससीसी 4, सज्जन कुमार बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो (2010) 9 एससीसी 368, उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पांधी (2005) 1 एससीसी 568। ओंकार नाथ मिश्रा और अन्य। बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और अन्य। (2008) 2 एससीसी 561, शक्सन बेल्थिसर बनाम केरल राज्य और अन्य। (2009) 14 एससीसी 466, और रूमी धर (श्रीमती) बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य। (2009) 6 एससीसी 364, कि आरोपमुक्त करने के लिए एक आवेदन पर विचार करते समय अदालत रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों की जांच

कर सकती है और आरोपी व्यक्तियों को आरोपमुक्त कर सकती है यदि ऐसे साक्ष्यों के आधार पर आरोपी के दोषी पाए जाने की कोई संभावना नहीं है, विशेष रूप से ऐसे मामलों में जहां आरोपी अपने बचाव के समर्थन में निर्विवाद सबूत पेश करता है। यह भी तर्क दिया गया कि यह जांच करते समय अदालत को आरोपी को बरी करना चाहिए या नहीं, यह ध्यान रखना चाहिए कि आईपीसी की धारा 498-ए एक बहुत ही दुरुपयोग वाला प्रावधान है और पति व उसके रिश्तेदारों को परेशान करने और अपमानित करने के लिए छोटी घटनाओं के अतिरंजित संस्करण अक्सर गलत तरीके से फंसाने के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं। उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों को लागू करते हुए, अपीलकर्ता, उनके लिए उपस्थित विद्वान वकील, सुश्री गीता लूथरा के अनुसार, न केवल मुक्ति के हकदार थे क्योंकि प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा शिकायत दर्ज करने में अत्यधिक देरी हुई थी, बल्कि इसलिए भी कि सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दिए गए बयान उन गवाहों द्वारा जो या तो लगाए गए थे या महज आकस्मिक गवाह थे, प्रकृति में विरोधाभासी थे। यह तर्क दिया गया कि दो जांच अधिकारियों ने मामले की जांच की और आरोपों को झूठा पाया, अदालत के पास इस पर विश्वास करने का कोई कारण नहीं था।

यह कहानी उस पत्नी द्वारा रची गई है जिसे तलाक की डिक्री का सामना करना पड़ा था, जिसके संबंध में उसने सेना अधिकारियों को 2 अक्टूबर, 2006 को एक पत्र लिखा था जिसमें कहा गया था कि वह इस

मामले को किसी भी अदालत में नहीं ले जा रही है। अपीलकर्ता नंबर 3-नवीन अहलावत ने 30 अक्टूबर, 2006 को दोबारा शादी की थी, शिकायत में उल्लिखित घटना एक मनगढ़ंत कहानी थी, जिस पहलू पर निचली अदालतें विचार करने में विफल रही थीं और इस प्रकार अपीलकर्ताओं को उत्पीड़न और एक आपराधिक मुकदमे को बदनामी से बचाने में विफल रही थीं।

9. प्रतिवादी नंबर 2 की ओर से, यह तर्क दिया गया कि उसके पति ने उसके खिलाफ फैमिली कोर्ट में तलाक की याचिका दायर की थी। मेरठ में प्रतिवादी नंबर 2 को अपने माता-पिता के साथ 327, प्रभात नगर, मेरठ में रहना दिखाया गया है, जबकि वह वास्तव में अपनी बेटी के साथ अपीलकर्ताओं के साथ नंबर 9. टाइग्रिस रोड, दिल्ली कैंट, दिल्ली में रह रही थी। आगे यह तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता नंबर 3 ने धोखाधड़ी के तरीकों से और प्रतिवादी नंबर 2 के जाली हस्ताक्षर करके, नोटिस की प्राप्ति स्वीकार करते हुए तलाक का एक पक्षीय डिक्री आदेश प्राप्त किया था, जो उसे संबंधित न्यायालय से कभी नहीं मिला था। यह इस तथ्य से निर्णायक रूप से स्थापित किया गया था कि 31 मई, 2006 की एक पक्षीय डिक्री को अंततः 28 जुलाई, 2007 के आदेश के संदर्भ में न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था। प्रतिवादी नंबर 2 की शारीरिक यातना और उसे छोड़ दिए जाने के संबंध में आरोप प्रश्नगत घटना की तारीख पर सड़क और दहेज उत्पीड़न के आरोप भी तथ्यात्मक रूप से सही थे और अपीलकर्ताओं

पर मुकदमा चलाने के लिए एक स्पष्ट मामला बनता है। प्रतिवादी के वकील के अनुसार, अपीलकर्ता नंबर 3 ने 30 अक्टूबर, 2006 को अदिति नाम की लड़की से शादी की थी। यह भी तर्क दिया गया था कि अपीलकर्ता नंबर 3 द्वारा संदर्भित पत्र और 2 नवंबर, 2006 का पत्र भी कथित तौर पर प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा लिखा गया था अपीलकर्ताओं द्वारा की गई जालसाजी थी। उपलब्ध सामग्री के आलोक में, ट्रायल कोर्ट का आरोपी व्यक्तियों को आरोप मुक्त करने से इनकार करना उचित था और अपीलकर्ताओं द्वारा स्थापित आरोप मुक्त करने के आधार की जांच केवल मामले की पूरी सुनवाई के बाद ही की जा सकती थी।

ने भारत संघ बनाम ए प्रफुल्ल कुमार समला और अन्य मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर विचार किया। (1979) 3 एससीसी 5।

10. वारंट केस होने का मामला सीआरपीसी की धारा 239 द्वारा शासित होता है। यह निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए कि क्या अभियुक्त या उनमें से कोई बरी किए जाने के योग्य है। धारा 239 इस प्रकार हैः

“239. जब अभियुक्त को बरी कर दिया जाएगा।

यदि धारा 173 के तहत पुलिस रिपोर्ट और उसके साथ भेजे गए दस्तावेजों पर विचार करने और अभियुक्तों की ऐसी परीक्षा, यदि कोई हो, जैसी मजिस्ट्रेट आवश्यक समझे और अभियोजन और अभियुक्त को सुनवाई

का अवसर देने के बाद, मजिस्ट्रेट विचार करता है। अभियुक्त के विरुद्ध आरोप निराधार है, तो वह अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगा, और ऐसा करने के लिए अपने कारण दर्ज करेगा।"

11. उपरोक्त को स्पष्ट रूप से पढ़ने से पता चलता है कि मामले की सुनवाई कर रही अदालत केवल उसके द्वारा दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए आरोपमुक्त करने का निर्देश दे सकती है और केवल तभी जब वह अभियुक्त के खिलाफ आरोप को आधारहीन मानती है। संहिता की धारा 240 में आरोप तय करने का प्रावधान है, यदि पुलिस रिपोर्ट और उसके साथ भेजे गए दस्तावेजों पर विचार करने और आरोपी की ऐसी जांच करने, यदि कोई हो, जैसा कि मजिस्ट्रेट आवश्यक समझता है, मजिस्ट्रेट की राय है कि यह मानने का आधार कि अभियुक्त ने अध्याय **XIX** के तहत विचारणीय अपराध किया है, जिसकी सुनवाई करने के लिए ऐसा मजिस्ट्रेट सक्षम है और जिसके लिए वह पर्याप्त रूप से दंडित किया जा सकता है। धारा 239 **Cr-P-C** का दायरा और उक्त प्रावधान के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय द्वारा अपनाए जाने वाला दृष्टिकोण ओंकार नाथ मिश्रा और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और अन्य (2008) 2 एससीसी 561 में इस न्यायालय के विचार के लिए आया। वह भी एक ऐसा मामला था जिसमें शिकायतकर्ता-पत्नी के पति और सास-ससुर के खिलाफ आईपीसी की धारा 34 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 498-ए और 406 के तहत शिकायत दर्ज की गई थी। मजिस्ट्रेट ने

सीआरपीसी की धारा 239 के तहत आरोपी को यह मानते हुए कि आरोप निराधार था उस मामले में आरोपमुक्त कर दिया था। शिकायतकर्ता ने पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष उस आदेश पर सवाल उठाया जिसमें ट्रायल कोर्ट को आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप तय करने का निर्देश दिया गया था। उच्च न्यायालय ने उस आदेश की पुष्टि की, मामला इस अदालत में लाया गया। इस न्यायालय ने सास-ससुर की अपील को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया जबकि पति की अपील को खारिज कर दिया। इस न्यायालय ने कानूनी स्थिति और आरोप तय करने या आरोपमुक्त करने का निर्देश देने के चरण में न्यायालय द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण को निम्नलिखित शब्दों में समझाया।

"11. यह सामान्य बात है कि आरोप तय करने के चरण में अदालत को रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि उनसे उभरने वाले तथ्य, उनके अंकित मूल्य पर लेने पर, सभी कथित अपराध को बनाने वाली सामग्री के अस्तित्व का खुलासा करते हैं। उस स्तर पर, अदालत से रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के संभावित मूल्य में गहराई तक जाने की उम्मीद नहीं की जाती है। इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अपराध किया गया है, न कि आरोपी को दोषी ठहराने का आधार तैयार कर लिया गया है। उस स्तर पर, सामग्री पर स्थापित मजबूत संदेह भी, जो अदालत को कथित अपराध का

गठन करने वाले तथ्यात्मक तत्वों के अस्तित्व के बारे में उस अपराध के घटित होने के संबंध में अनुमानित राय बनाने के लिए प्रेरित करता है, आरोपी के खिलाफ आरोप तय करने को उचित ठहराएगा।

(जोर दिया गया)

12. उपरोक्त दृष्टिकोण के लिए समर्थन इस न्यायालय द्वारा कर्नाटका राज्य बनाम एलवी मुनिस्वामी 1977 क्रि.एलजे 1125, महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम वी. सोम नाथ थापा और अन्य 1996 क्रि.एल.जे. 2448 में दिए गए पहले के निर्णयों से लिया गया था एवं राज्य म.प्र. बनाम मोहनलाल सोनी 2000 क्रि.एलजे 3504. सोम नाथ के मामले (सुप्रा) में कानूनी स्थिति को निम्नानुसार संक्षेपित किया गया था।

"अगर रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर,

कोई अदालत इस निष्कर्ष पर आ सकती है कि अपराध का होना एक संभावित परिणाम है, आरोप तय करने का मामला मौजूद है। इसे अलग तरीके से कहें तो, अगर अदालत को लगता है कि आरोपी ने अपराध किया होगा तो वह आरोप तय कर सकती है, हालांकि दोषसिद्धि के लिए निष्कर्ष यह होना जरूरी है कि आरोपी ने अपराध किया है। यह स्पष्ट है कि आरोप तय करने के चरण में, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों के संभावित मूल्य पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है, अभियोजन पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्रियों को उस चरण में सत्य माना जाना चाहिए।"

(जोर दिया गया)

13. मोहनलाल के मामले (सुप्रा) में भी इस न्यायालय ने कई पिछले निर्णयों का उल्लेख किया और माना कि आरोप तय करने के लिए अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण के संबंध में न्यायिक राय यह है कि ऐसे आरोप तय किए जाने चाहिए यदि न्यायालय प्रथम दृष्टया पाता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही का आधार पर्याप्त हैं। न्यायालय को सबूतों की सराहना करने की आवश्यकता नहीं है जैसे कि यह निर्धारित करना हो कि प्रस्तुत की गई सामग्री अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त थी या नहीं। मोहनलाल के मामले (सुप्रा) में निर्णय का निम्नलिखित अंश इस संबंध में उपयुक्त है

8. क्रिस्टलीकृत न्यायिक दृष्टिकोण यह है कि आरोप तय करने के स्तर पर अदालत को प्रथम दृष्टया विचार करना होगा क्या इसके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं। अदालत को यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए साक्ष्य की सामग्रियाँ पर्याप्त है या नहीं साक्ष्य की सराहना करने की आवश्यकता नहीं है।

14. उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पांधी (2005) 1 एससीसी 568 में, यह न्यायालय इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या ट्रायल कोर्ट आरोप तय करने के समय अभियुक्त द्वारा दायर की गई सामग्री पर विचार

कर सकता है। इस प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित शब्दों में नकारात्मक दिया गयाः

18. हम उपरोक्त तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। अनुच्छेद 14 और 21 पर निर्भरता ग़लत है।

आगे, आरोप तय करने के चरण में रोविंग और फिशिंग पूछताछ की अनुमति नहीं है। अगर आरोपी की दलील मान ली गई तो आरोप तय करने के चरण में मिनी ट्रायल होगा। इससे संहिता का उद्देश्य विफल हो जाएगा। यह सर्वविदित है कि आरोप तय करने के चरण में आरोपी का बचाव नहीं किया जा सकता। अभियुक्त के लिए विद्वान वकील के तर्क को स्वीकार करने का अर्थ होगा अभियुक्त को आरोप तय करने के चरण में अपना बचाव प्रस्तुत करने और उस चरण में उसकी जांच करने की अनुमति देना जो आपराधिक न्यायशास्त्र के विरुद्ध है। उदाहरण के तौर पर, यह ध्यान दिया जा सकता है कि अभियुक्त द्वारा ली गई एलिबी की दलील की जांच आरोप तय करने के चरण में की जा सकती है यदि अभियुक्त के तर्क को अच्छी तरह से स्थापित प्रस्ताव के बावजूद जोर दिया जाता है कि यह अभियुक्त पर निर्भर है ऐसी दलील को कायम रखने के लिए विचारण में प्रमुख साक्ष्य प्रस्तुत करें। यदि हम आरोपी की ओर से दिए गए तर्क को स्वीकार कर लेते हैं तो आरोपी आरोप तय करने के चरण में ऐसी याचिका के सबूत में सामग्री और दस्तावेज पेश करने का हकदार होगा।

कानून का यह इरादा कभी नहीं रहा है। सौ वर्षों से अधिक समय से अब यह इस प्रकाश में है कि धारा 227 द्वारा प्रतिपादित अभियुक्तों की दलीलों को सुनने के बारे में प्रावधान को समझा जाना चाहिए, इसका मतलब केवल अभियोजन पक्ष द्वारा दायर मामले के रिकॉर्ड पर अभियुक्तों की दलीलों व इसके साथ जमा किए गए दस्तावेजों पर सुनना है और कुछ नहीं। अभियुक्त की दलीलों को सुनने की अभिव्यक्ति का अर्थ अभियुक्त को दी जाने वाली सामग्री दाखिल करने का अवसर है और इसका अर्थ स्थापित कानून को बदलना नहीं हो सकता है। आरोप तय करने की स्थिति में आरोपी की दलीलों की सुनवाई पुलिस द्वारा पेश की गई सामग्री तक ही सीमित रहनी चाहिए।

23. उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, हमारे विचार से, स्पष्ट रूप से कानून यह है कि आरोप तय करते समय या प्रसंज्ञान लेते समयअभियुक्त को कोई सामग्री प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है।

(जोर दिया गया)

15. यहां तक कि श्रीमती रूमी धर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य में भी। (2009) 6 एससीसी 364, जिसके बाद अपीलकर्ताओं के वकील द्वारा सीआरपीसी की धारा 239 के तहत आरोपी व्यक्ति के आरोपमुक्त करने के चरण में लागू किए जाने वाले परीक्षणों को अलग नहीं पाया गया। आरोपमुक्त करने को प्रोत्साहित करने की बात तो दूर,

न्यायालय ने माना कि अपराध के संबंध में एक मजबूत संदेह भी आरोप तय करने को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त होगा। न्यायालय ने कहाः

संहिता की धारा 239 के तहत दायर आरोपमुक्ति के लिए आवेदन पर विचार करते समय, यह न्यायाधीश का काम था कि वह प्रत्येक आरोपी व्यक्ति के खिलाफ लगाए गए आरोपों के विवरण में जाए ताकि यह राय बनाई जा सके कि क्या कोई मामला है। इसके संबंध में एक मजबूत संदेह के रूप में बनाया गया है या नहीं, यह कानून की आवश्यकताओं के अधीन होगा।

16. भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल और अन्य मामले में इस न्यायालय का निर्णय भी इसी आशय का है। वी. (1979) 3 एससीसी 4, जहां यह न्यायालय आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के संदर्भ में एक समान प्रश्न की जांच कर रहा था। कानूनी स्थिति को निम्नानुसार संक्षेपित किया गया थाः

10. इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित लेखकों पर विचार करने पर, निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैंः

(1) कि न्यायाधीश प्रश्न पर विचार करते समय संहिता की धारा 227 के तहत आरोप तय किया गया है सबूतों को छानने और तौलने की निस्संदेह शक्ति प्रथम दृष्टया है या नहीं इसका पता लगाने का सीमित उद्देश्य आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला कायम कर लिया गया है।

(2)जहां न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री आरोपी के खिलाफ गंभीर संदेह का खुलासा करती है जिसका उचित रूप से विवरण नहीं दिया जाने पर

1048 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट (2012) 10 एस.सी.आर.

अदालत आरोप तय करने और मुकदमे को आगे बढ़ाने में पूरी तरह से न्यायसंगत होगी।

(3) प्रथम दृष्टया मामले को निर्धारित करने का परीक्षण स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और सार्वभौमिक अनुप्रयोग का नियम बनाना मुश्किल है। हालाँकि, कुल मिलाकर यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं और न्यायाधीश इस बात से संतुष्ट है कि उसके सामने पेश किए गए साक्ष्य कुछ संदेह को जन्म दे रहे हैं, लेकिन आरोपी के खिलाफ गंभीर संदेह नहीं है, तो आरोपी को बरी करने के लिए पूरा अधिकार है।

(4) संहिता की धारा 227 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय न्यायाधीश, जो वर्तमान संहिता के तहत एक वरिष्ठ और अनुभवी न्यायाधीश है, केवल एक डाकघर या अभियोजन के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, बल्कि उसे व्यापक संभावनाओं पर विचार करना होगा। मामले का विवरण, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों और दस्तावेजों का कुल प्रभाव, मामले में दिखाई देने वाली कोई

बुनियादी कमज़ोरियाँ इत्यादि। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायाधीश को मामले के पक्ष और विपक्ष की गहन जाँच करनी चाहिए और सबूतों को ऐसे तौलना चाहिए जैसे कि वह कोई सुनवाई कर रहा हो।"

17. मामले की बात करें तो, अपीलकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोप न केवल पति के खिलाफ बल्कि शिकायतकर्ता-पत्नी के सास-ससुर के खिलाफ भी विशिष्ट हैं। वे आरोप सही हैं या नहीं, यह एक ऐसा मामला है जिसे आरोप तय करने के चरण में निर्धारित नहीं किया जा सकता है। ऐसा कोई भी निर्धारण केवल मुकदमे के समापन पर ही हो सकता है। यह कभी-कभी किसी निर्दोष पक्ष को, जिस पर अपराध करने का झूठा आरोप लगाया गया है, परिहार्य उत्पीड़न का सामना करना पड़ सकता है, लेकिन जब तक कानूनी आवश्यकता और निर्धारित सिद्धांत दोषमुक्ति की अनुमति नहीं देते, तब तक न्यायालय को उस कानूनी प्रक्रिया को स्वीकार करते हुए बहुत कुछ करना मुश्किल होगा। कभी-कभी बेईमान वादियों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जाता है, विशेष रूप से वैवाहिक मामलों में जहां प्रवृत्ति विपरीत पक्ष के परिवार के अधिक से अधिक सदस्यों को शामिल करने की होती है। जबकि ऐसी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए, अदालत प्रारंभिक चरण में यह अनुमान लगाने में सक्षम नहीं होगी कि आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोप सही हैं या गलत। इस मामले में अपीलकर्ताओं में से दो शिकायतकर्ता के सास-ससुर हैं जो वरिष्ठ नागरिक हैं। अपीलकर्ता नंबर 1, जो शिकायतकर्ता-पत्नी का ससुर है, सेना में एक

मेजर जनरल रहा है, जो हर तरह से एक सम्मानजनक पद है। लेकिन दंपत्ति के खिलाफ और पति के खिलाफ लगाए गए आरोपों की प्रकृति इतनी अधिक विशिष्ट प्रतीत होती है कि कम से कम आरोप तय करने के चरण में इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसलिए, निचली अदालतों ने आरोपमुक्त करने से इनकार करके कोई गलती नहीं की।

18.परिणामस्वरूप, यह अपील विफल हो जाती है और इसे खारिज कर दिया जाता है। हालाँकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम निर्देश देते हैं कि अपीलकर्ता नंबर 1 और 2 को ट्रायल कोर्ट के समक्ष व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट दी जाएगी, सिवाय इसके कि जब ट्रायल कोर्ट उनकी उपस्थिति का निर्देश देना आवश्यक समझे। हालाँकि, उक्त अपीलकर्ताओं को यह सुनिश्चित करना होगा कि सुनवाई की सभी तारीखों पर एक वकील द्वारा उनका विधिवत प्रतिनिधित्व किया जाए और वे मामले की प्रगति में सहयोग करें, अन्यथा ट्रायल कोर्ट उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति का निर्देश देने के लिए स्वतंत्र होगा। कोई कोस्ट नहीं।

अपील खारिज.

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्रीमती ऋचा चैधरी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।